❑ महोपाध्याय विनयसागर

इन्द्रभूति गौतम

खंतिखमं गुणकलियं सव्वलद्धिसम्पन्नं ।
वीरस्स पढमं सीसं गोयमसामिं नमंसामि ।।

अब्धिर्लब्धिकदम्बकस्य तिलको निःशेषसूर्यावले-
रापीडः प्रतिबोधने गुणवतामग्रेसरो वाग्मिनाम् ।
इष्टान्तो गुरुभक्तिशालिमनसां मौलिस्तपः श्रीजुषां,
सर्वाश्चर्यमयो महिष्ठसमयः श्रीगौतमस्तान् मुदे ।।

अंगुष्ठे चामृतं यस्य यश्च सर्वगुणोदधिः ।
भण्डारः सर्वलब्धदीनां वन्दे तं गौतमप्रभुम् ।।

श्रीगौतमो गणधरः प्रकटप्रभावः,
सल्लब्धि-सिद्धिनिधिरञ्चितवाक्प्रबन्धः ।
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाशः,
साहाय्यकृद् भवतु मे जिनवीरशिष्यः ।।

सर्वारिष्टप्रणाशाय सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय गौतमस्वामिने नमः ।।

भारतीय समाज में विघ्नोच्छेदक एवं कल्याण-मंगल-कारक के रूप में जो सर्वमान्य स्थान गणपति/गणेश का है उससे भी अधिक एवं विशिष्टतम स्थान जैन समाज तथा जैन साहित्य में गणधर गौतम स्वामी का है। जैन परम्परा में तो इन्हें विघ्नहारी मंगलकारी के अतिरिक्त क्षान्त्यादि सर्वगुण परिपूर्ण, समस्त लब्धियों, सिद्धियों, निधियों के धारक और प्रदाता, सत् विद्या/द्वादशांगी के निर्माता, प्रतिबोधनपटु, चिन्तामणिरत्न एवं कल्पवृक्ष के सदृश अभीष्ट फलदाता, गणाधीश और प्रातः स्मरणीय माना गया है। गुरु-भक्ति में तो इनका नाम उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

न केवल जैन साहित्य में ही अपितु विश्व साहित्य में भी इस प्रकार का कोई उदाहरण प्राप्त नहीं है कि किसी गुरु ने अपने समग्र जीवन-काल में पद-पद/स्थान-स्थान पर अपने से अभिन्न शिष्य का सहस्राधिक बार नामोच्चारण कर, प्रश्नों के उत्तर या सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया हो। गणधर गौतम ही विश्व में उन अनन्यतम शिष्यों में से हैं कि जिनका चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर अपने श्रीमुख से प्रतिक्षण-प्रतिपल ''गोयमा! गौतम!'' का उच्चारण/उल्लेख करते रहे। समग्र जैनागम साहित्य इसका साक्षी है।

विश्व चेतना के धनी गुरु गौतम चिन्तन से, व्यवहार से, संघ नेतृत्व से पूर्णरूपेण अनेकान्त की जीवन्त मूर्ति हैं। इनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा से, असीम स्नेह से, आत्मीयता परिपूर्ण अनुशासन से, विश्वजनीन कारुण्यवृत्ति से महावीर के संघोद्यान की कोई भी कली ऐसी नहीं है, जो अधखिली रह गई हो!

सन्त प्रवर मुनि रूपचन्द्र के शब्दों में कहा जाय तो–

''प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम! चौदह पूर्वों के अतल श्रुतसागर के पारगामी गौतम! भगवान महावीर के कैवल्य हिमालय से निःसृत वाणी-गंगा को धारण करने वाले भागीरथ गौतम! विनय और समर्पण के उज्ज्वल-समुन्नत शैल-शिखर गौतम! तीर्थंकर पार्श्वनाथ और तीर्थंकर महावीर की गंगा-यमुना-धारा के प्रयागराज गौतम! अद्‌भुत लब्धि-चमत्कारों के क्षीर-सागर गौतम!

गौतम का व्यक्तित्व अनन्त है। जैन-शासन को गौतम का अनुदान अनन्त है। और, अनन्त है सम्पूर्ण मानव जाति को गौतम का सम्प्रदायातीत ज्योतिर्मय अवदान। गौतम के आलेख के बिना भगवान महावीर की धर्म-तीर्थ-प्रवर्तन की ज्योति-यात्रा का इतिहास अधूरा है। गौतम के उल्लेख के बिना अनन्त श्रुत-सम्पदा पर भगवान महावीर के हस्ताक्षर भी अधूरे हैं।''

गु + अज्ञानान्धकार के, रु + नाशक = गुरु गौतम श्रमण भगवान महावीर के प्रथम शिष्य/प्रथम गणधर हैं। गण के संस्थापक तीर्थंकर होते हैं और उसके संवाहक गणधर कहलाते हैं। अथवा आचार्य मलयगिरि के शब्दों में कहा जाय तो अनुत्तर ज्ञान एवं अनुत्तर दर्शन आदि धर्म समूह/गण के धारक कहलाते हैं। ऐसे यथार्थरूप में गणधर पदधारक गौतम का नाम वस्तुतः इन्द्रभूति है। इनका यह नाम भी यथा नाम तथा गुण के अनुरूप ही है; क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये इन्द्र के समान ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। गौतम तो इनका गोत्र है। किन्तु, जैन समाज की आबाल-वृद्ध जनता सहस्राब्दियों से इन्हें गौतम स्वामी के नाम से ही जानती-पहचानती/पुकारती आई है।

जीवन-चरित्र

गौतमस्वामी का व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपमेय है। सर्वांग रूप से इनका जीवन-चरित्र प्राप्त नहीं है, किन्तु इनके जीवन की छुट-पुठ घटनाओं के उल्लेख आगम, निर्युक्ति, भाष्य, टीकाओं में बहुलता से प्राप्त होते हैं। यत्र-तत्र प्राप्त उल्लेखों/बिखरी हुई कड़ियों के आधार पर इनका जो जीवन-चरित्र बनता है, वह इस प्रकार है।

जन्म : मगध देश के अन्तर्गत नालन्दा के अनति-दूर "गुव्वर" नाम का ग्राम था, जो समृद्धि से पूर्ण था। वहाँ विप्रवंशीय गौतम गोत्रीय वसुभूति नामक श्रेष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उनकी अर्धांगिनी का नाम पृथ्वी था। पृथ्वी माता की रत्नकुक्षि से ही ईस्वी पूर्व ६०७ में ज्येष्ठा नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम इन्द्रभूति रखा गया था। इनके अनन्तर चार-चार वर्ष के अन्तराल में विप्र वसुभूति के दो पुत्र और हुए; जिनके नाम क्रमश: अग्निभूति और वायुभूति रखे गये थे।

अध्ययन : यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् इन्द्रभूति ने उद्भट शिक्षा-गुरु के सान्निध्य में रहकर ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व–इन चारों वेदों; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष इन छहों वेदांगों तथा मीमांसा, न्याय, धर्म-शास्त्र एवं पुराण– इन चार उपांगों का अर्थात् चतुर्दश विद्याओं का सम्यक् प्रकार से तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था।

आचार्य : चौदह विद्याओं के पारंगत विद्वान् होने के पश्चात् इन्द्रभूति के तीन कार्य-क्षेत्र दृष्टि-पथ में आते हैं–

१. अध्यापन– इन्होंने ५०० छात्रों/बटुकों को समग्र विद्याओं का अध्ययन कराते हुए सुयोग्यतम वेदवित्, कर्मकाण्डी और वादी बनाये। ये ५०० छात्र शरीर-छाया के समान सर्वदा इनके साथ ही रहते थे।

२. शास्त्रार्थ– दुर्धर्ष विद्वान् होने के कारण इन्द्रभूति ने छात्र-समुदाय के साथ उत्तरी भारत में घूम-घूम कर, स्थान-स्थान पर तत्कालीन विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किये और उन्हें पराजित कर अपनी दिग्विजय पताका फहराते रहे। किन-किन के साथ और किस-किस विषय पर शास्त्रार्थ किये? उल्लेख प्राप्त नहीं हैं।

३. यज्ञाचार्य– इन्द्रभूति प्रमुखत: मीमांसक होने के कारण कर्मकाण्डी थे। स्वयं प्रतिदिन यज्ञ करते और विशालतम याग-यज्ञादि क्रियाओं के अनुष्ठान करवाते थे। यज्ञाचार्य के रूप में दसों दिशाओं में इनकी प्रसिद्धि थी। फलत: अनेक वैभवशाली गृहस्थ बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान कराने के लिए इन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित कर स्वयं को भाग्यशाली समझते थे। इन्द्रभूति की कीर्ति से आकृष्ट होकर अपार जन-समूह दूरस्थ प्रदेशों से इनकी यज्ञ-आहुति में पहुँच कर अपने को धन्य समझता था।

स्पष्ट है कि इनका विशाल शिष्य समुदाय था। इनके अप्रतिम वैदुष्य के समक्ष बड़े-बड़े पण्डित व शास्त्र-धुरन्धर नतमस्तक हो जाते थे। अतिनिष्णात वेद-विद्या और उच्च यज्ञाचार्य के समकक्ष उस समय इन्द्रभूति की कोटि का कोई दूसरा विद्वान् मगध देश में नहीं था।

छात्र संख्या– विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार गौतम ५०० शिष्यों के साथ महावीर के शिष्य बने थे, निर्विवाद है। किन्तु अपने अध्यापन काल में तो उन्होंने सहस्रों छात्रों को शिक्षित कर विशिष्ट विद्वान् अवश्य बनाये होंगे? इस सम्बन्ध में आचार्य श्री हस्तिमलजी ने "इन्द्रभूति गौतम" लेख में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे उपयुक्त प्रतीत होते हैं–

"सम्भवत: इस प्रकार ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे वेद-वेदांग के आचार्य बने हों। उनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाने के कारण यह सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि सैकड़ों की संख्या में शिक्षार्थी उनके पास अध्ययनार्थ आये हों और यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते ५०० ही नहीं अपितु इससे कहीं अधिक बढ़ गई हो। इन्द्रभूति के अध्यापन काल का प्रारम्भ उनकी ३० वर्ष की वय से भी माना जाय तो २० वर्ष के अध्यापन काल की सुदीर्घ अवधि में अध्येता बहुत बड़ी संख्या में स्नातक बनकर निकल चुके होंगे और उनकी जगह नवीन छात्रों का प्रवेश भी अवश्यम्भावी रहा होगा। ऐसी स्थिति में अध्येताओं की पूर्ण संख्या ५०० से अधिक होनी चाहिए। ५०० की संख्या केवल नियमित रूप से अध्ययन करने वाले छात्रों की दृष्टि से ही अधिक संगत प्रतीत होती है।"

विवाह– अध्ययनोपरान्त इन्द्रभूति का विवाह हुआ या नहीं? कहाँ हुआ? किसके साथ हुआ? इनकी वंश-परम्परा चली या नहीं? इस प्रसंग में दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के समस्त शास्त्रकार मौन हैं। इन्द्रभूति ५० वर्ष की अवस्था तक गृहवास में रहे, यह सभी को मान्य है, परन्तु, उस अवस्था तक वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे या गार्हस्थ्य जीवन में रहे? कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अत: यह मान सकते हैं कि इन्द्रभूति ने अपना ५० वर्ष का जीवन अध्ययन, अध्यापन, वाद-विवाद और कर्मकाण्ड में रहते हुए बाल-ब्रह्मचारी के रूप में ही व्यतीत किया था।

शरीर-सौष्ठव– भगवती सूत्र में इन्द्रभूति की शारीरिक रचना के प्रसंग में कहा गया है–इन्द्रभूति का देहमान ७ हाथ का था, अर्थात् शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। आकार समचतुरस्र संस्थान/लक्षण (सम चौरस शरीराकृति) युक्त था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रऋषभनाराच– वज्र के समान सुदृढ़ संहनन था। इनके शरीर का रंग-रूप कसौटी पर रेखांकित स्वर्ण रेखा एवं कमल की केशर के समान पद्मवर्णी/गौरवर्णी था। विशाल एवं उन्नत ललाट था और कमल-पुष्प के समान मनोहारी नयन थे। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनकी शरीर-कान्ति देदीप्यमान और नयनाभिराम थी।

अन्तिम यज्ञ–उस समय अपापा नगरी में वैभव सम्पन्न एवं राज्यमान्य सोमिल नामक द्विजराज रहते थे। उन्होंने अपनी समृद्धि के अनुसार अपनी नगरी में ही विशाल यज्ञ करवाने का आयोजन किया था। सोमिल ने यज्ञ के अनुष्ठान हेतु बिहार प्रदेशस्थ राजगृह, मिथिला आदि स्थानों के अनेक दिग्गज कर्मकाण्डी विद्वानों को आमन्त्रित किया था। इनमें ग्यारह उद्भट याज्ञिक प्रमुखों– इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य एवं प्रभास– को तो बड़े आग्रह के साथ आमन्त्रित किया था। उक्त ग्यारह आचार्य भी अपने विशाल छात्र/शिष्य समुदाय के साथ यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु अपापा आ गये थे। विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार इन यज्ञाचार्यों की शिष्य संख्या निम्न थी :–

इन्द्रभूति ५००, अग्निभूति ५००, वायुभूति ५००, व्यक्त ५००, सुधर्म ५००, मंडित ३५०, मौर्यपुत्र ३५०, अकम्पित ३००, अचलभ्राता ३००, मेतार्य ३००, प्रभास ३००। इस प्रकार इन ग्यारह आचार्यों की कुल शिष्य संख्या ४४०० थी।

इन्द्रभूति के अप्रतिम, वैदुष्य और प्रकृष्टतम यशोकीर्ति के कारण यज्ञानुष्ठान में मुख्य आचार्य के पद पर इनको अभिषिक्त किया गया था तथा इनके तत्त्वावधान में ही यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ था।

यज्ञ के विशालतम आयोजन तथा इन्द्रभूति आदि उक्त दुर्धर्ष आचार्यों की कीर्ति से आकर्षित होकर दूर-दूर प्रदेशों से अपार जनसमूह उस यज्ञ समारोह को देखने के लिए उमड़ पड़ा था।

उस समय अपापा नगरी का वह यज्ञ-स्थल एक साथ सहस्रों कण्ठों से उच्चरित वेद मन्त्रों की सुमधुर ध्वनि से गगन मंडल को गुंजायमान करने वाला हो गया था। यज्ञ वेदियों में हजारों स्रुवाओं से दी जाने वाली घृतादि की आहुतियों की सुगन्ध एवं धूम्र के घटाटोप से धरा, नभ और समस्त वातावरण एक साथ ही गुंजरित, सुगन्धित एवं मेघाच्छन्न-सा हो उठा था। विशालतम यज्ञ-मण्डप में उपस्थित जन-समूह आनन्द-विभोर होकर एक अनिर्वचनीय मस्ती/आह्लाद में झूमने लगा था।

महावीर का समवसरण

इधर क्षत्रिय कुण्ड के राजकुमार वर्धमान जिनका ईस्वी पूर्व ५९९ में जन्म हुआ था और जिन्होंने आत्म-साधना विचार से प्रेरित होकर, राज्य-वैभव और गृहवास का पूर्णतः परित्याग कर ईस्वी पूर्व ५६९ में प्रव्रज्या ग्रहण कर ली थी। दीक्षानन्तर अनेक प्रदेशों में विचरण करते हुए, अकथनीय उपसर्गों/परीषहों का समभाव से सहन करते हुए, उत्कट तपश्चर्या द्वारा शरीर को आतापना देते हुए, पूर्वकृत कर्म-परम्परा को निर्जर/क्षय करते हुए, साढ़े बारह वर्ष के दीर्घकालीन समय तक जो संयम-साधना में रत रहे और अन्त में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय इन चारों घाति कर्मों का नाश कर, केवलज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त कर ईस्वी पूर्व ५५७ में वैशाख शुक्ला १० को सर्वज्ञ बन गये थे।

श्रमण वर्धमान/महावीर जृम्भिका नगर के बाहर, ऋजुवालिका नदी के किनारे श्यामाक गाथापति के क्षेत्र में शालवृक्ष के नीचे, गोदाहिका आसन से उत्कट रूप में बैठे हुए ध्यानावस्था में केवलज्ञानी बने थे।

सर्वज्ञ बनते ही चतुर्विधनिकाय के देवों ने ज्ञान का महोत्सव किया और तत्क्षण ही वहाँ समवसरण की रचना की। समवसरण में विराजमान होकर प्रभु ने प्रथम देशना दी, किन्तु वह निष्फल हुई। इसीलिए यह ''अच्छेरक'' आश्चर्यकारक माना गया। तीर्थ-स्थापना का अभाव देखकर प्रभु ने वहाँ से रात्रि में ही विहार कर, वैशाख शुक्ला एकादशी को प्रातः समय में अपापा नगरी के महसेन नामक उद्यान में पधारे। देवों ने तत्क्षण ही वहाँ विशाल, सुन्दर, मनोहारी एवं रमणीय समवसरण की एवं अष्ट प्रातिहार्यों की रचना की। महावीर समवसरण के मध्य में अशोक वृक्ष के नीचे देव-निर्मित सिंहासन पर बैठकर अपनी अमोघ दिव्यवाणी से स्वानुभूत धर्मदेशना देने लगे।

केवलज्ञान से देदीप्यमान प्रभु के दर्शन करने और उनकी अमृतोपम देशना को सुनने के लिये अपापा नगरी का जन-समूह लालायित हो उठा और हजारों नर-नारी समवसरण में जाने के लिये उमड़ पड़े। गली-गली में एक ही स्वर घोष/कलरव गूँज उठा 'सर्वज्ञ के दर्शन के लिये त्वरा से चलो। जो पहले दर्शन करेगा वह भाग्यशाली होगा।' फलतः प्रातःकाल से अपार जनमेदिनी समवसरण में पहुँच कर, धर्म-देशना सुनकर अपने जीवन को सफल/कृतकृत्य समझने लगी।

देवगणों में केवलज्ञान का महोत्सव करने, सर्वज्ञ के दर्शन करने और उनकी दिव्यवाणी सुनने की होड़ा-होड़ मच गई। फलतः देवता भी अपनी देवांगनाओं के साथ स्वकीय-स्वकीय विमानों में बैठकर समवसरण की ओर वेग के साथ भागने लगे। हजारों देव-विमानों के आगमन से विशाल गगन-मण्डल भी आच्छादित हो गया।

याज्ञिकों का भ्रम–यज्ञ मण्डप में विराजमान अध्वर्य आचार्यों और सहस्रों यज्ञ-दर्शकों की दृष्टि सहसा नभो-मण्डल की ओर उठी। आकाश में एक साथ हजारों विमानों को देख कर यज्ञ में उपस्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगों की आँखें चौंधिया गईं। आँखों को मलते हुए स्पष्टत: देखा कि सहस्रों सूर्यों की तरह देदीप्यमान सहस्रों विमानों से नीलगगन ज्योतिर्मय हो रहा है। देव विमानों को यज्ञ-मण्डप की ओर अग्रसर होते देख उपस्थित अपार जन-समूह यज्ञ का महात्म्य समझ कर आनन्द विभोर हो उठा।

प्रमुख यज्ञाचार्य इन्द्रभूति गौतम अत्यन्त प्रमुदित हुए और घनगम्भीर गर्वोन्नत स्वर में यजमान सोमिल को सम्बोधित कर कहने लगे–''देखो विप्रवर! यज्ञ और वेद मन्त्रों का प्रभाव देखो! सत्युग का दृश्य साकार हो गया है! अपना-अपना हविर्भाग पुरोडाश ग्रहण करने इन्द्रादि देव सशरीर तुम्हारे यज्ञ में उपस्थित हो रहे हैं। तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है।'' और, स्वयं शतगुणित उत्साह से प्रमुदित होकर और अधिक उच्च स्वरों से वेद मंत्रोच्चारण करते हुये आहुतियाँ देने लगे। सहस्रों कण्ठों से एक साथ नि:सृत मन्त्र-ध्वनि और स्वाहा के तुमुल घोष से आकाश गूंज उठा।

परन्तु, 'यह क्या! ये सारे देव-विमान तो यहाँ उतरने चाहिये थे, वे तो इस यज्ञ-मण्डप को लांघ कर नगर के बाहर जा रहे हैं! क्या ये देवगण मन्त्रों के आकर्षण से यहाँ नहीं आ रहे हैं! क्या यज्ञ का प्रभाव इन्हें आकृष्ट नहीं कर रहा है।' सोचते-सोचते ही न केवल इन्द्रभूति का ही अपितु सभी याज्ञिकों का गर्वस्मित मुख श्यामल हो गया। नजरें नीची हो गईं। आहुति देते हाथ स्तम्भित से हो गए। मन्त्र-ध्वनि शिथिल पड़ गई। नीची गर्दन कर इन्द्रभूति मन ही मन सोचने लगे। 'पर, ये देवगण जा किसके पास रहे हैं?' सोच ही रहे थे कि देवों का तुमुल-घोष कर्णकुहरों में पहुँचा कि–''चलो, शीघ्र चलो, सर्वज्ञ महावीर को वन्दन करने महसेन वन शीघ्र चलो।'' इन्द्रभूति को विश्वास नहीं हुआ। अपने बटुकों/शिष्यों/छात्रों को भेजकर जानकारी करवाई तो ज्ञात हुआ–''भगवान महावीर केवलज्ञानी/सर्वज्ञ बनकर अपापा नगरी के बाहर महसेन वन में आये हैं। देव-निर्मित अलौकिक समवसरण में बैठकर धर्मदेशना दे रहे हैं। उन्हीं को नमन करने एवं उनकी देशना सुनने नगर निवासी झुण्ड के झुण्ड बनाकर वहाँ पहुँच रहे हैं। समस्त देवगण भी समवसरण में सर्वज्ञ महावीर की अनुचरों की भाँति सेवा कर रहे हैं।'' सुनते ही आहत सर्प की तरह गर्वाहत होकर इन्द्रभूति हुंकार करते हुए गरजने लगे। क्रोधावेश के कारण उनका मुख लाल-लाल हो गया। आँखों से मानो ज्वालाएँ निकलने लगीं। हाथ-पैर काँपने लगे। वे बुदबुदा उठे–

कौन सर्वज्ञ है? कौन ज्ञानी है? विश्व में मेरे अतिरिक्त न कोई सर्वज्ञ है और न कोई ज्ञानी। देश के सारे ज्ञानियों/विद्वानों को तो मैंने शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था, कोई शेष नहीं बचा था। फिर यह नया सर्वज्ञ कहाँ से पैदा हो गया। यह महावीर नाम भी मैंने पहले कभी नहीं सुना था। अरे! हाँ, याद आया, उस बटुक ने कहा था–''ज्ञातवंशीय महावीर अलौकिक शक्ति के भी धारक हैं।'' हूँ! तो यह क्षत्रिय है! ब्राह्मणों से विद्या प्राप्त करने वाला और विप्रों के चरण-स्पर्श करने वाला क्षत्रिय सर्वज्ञ बन बैठा है। धोखा है। यह सर्वज्ञ नहीं, इन्द्रजाली प्रतीत होता है। इन्द्रजाल/सम्मोहिनी विद्या से इसने सब को बेवकूफ बना रखा है। शेर की खाल ओढ़कर यह सियार अपनी माया जाल से सब को मूर्ख बना रहा है। मानता हूँ, मानव तो माया जाल में आकर मूर्ख बन सकता है, देवता नहीं। किन्तु, यहाँ तो सारे के सारे देवता भी इसके जाल में फँसकर भटक रहे हैं। चाहे कोई भी हो, मेरे अगाध वैदुष्य के समक्ष कोई टिक नहीं सकता। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं वैसे ही इस पृथ्वीतल पर मेरी विद्यमानता में दूसरे सर्वज्ञ का अस्तित्व नहीं रह सकता। यह कैसा भी सर्वज्ञ हो, इन्द्रजाली हो, मायावी हो, मैं जाकर उसके सर्वज्ञत्व को, मायावीपन को ध्वस्त कर दूँगा, छिन्न-भिन्न कर दूँगा। मेरे सन्मुख कोई भी कैसा भी क्यों न हो, टिक नहीं सकता। तो, मैं चलूं उस तथाकथित सर्वज्ञ का मान-मर्दन करने।

भ्रम-निवारण–अभिमानाभिभूत होकर इन्द्रभूति तत्क्षण ही यज्ञवेदी से उतरे, अपनी शिखा में गाँठ बाँधी, अन्तरीय वस्त्र ठीक किया, खड़ाऊ पहने और मदमत्त हाथी की चाल से चल पड़े महावीर के समवसरण की ओर। अन्य दसों याज्ञिकाचार्य देखते ही रह गये। इन्द्रभूति के पीछे-पीछे उनके ५०० छात्र शिष्य भी अपने गुरु का जय-जयारव करते हुए एवं वादीगजकेसरी, वादीमानमर्दक, वादीघूकभास्कर, वादीभपंचानन, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि विरुदावली का पाठ करते हुए चल पड़े। अहंकार और ईर्ष्या मिश्रित मुख-मुद्रा धारक आचार्य को त्वरा के साथ गमन करते देखकर, नगरवासी स्तम्भित से रह गए। कुछ कुतूहल प्रिय नागरिक मजा देखने उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

सर्वज्ञ दर्शन–अपापा नगरी से बाहर निकल कर इन्द्रभूति ज्यों ही महसेन वन की ओर बढ़े, तो देवनिर्मित समवसरण की अपूर्व एवं नयनाभिराम रचना देखकर वे दिङ्मूढ़ से हो गये। जैसे-तैसे समवसरण के प्रथम सोपान पर कदम रखा। समवसरण में स्फटिक रत्न के सिंहासन पर विराजित वीतराग महावीर के प्रशान्त मुख-मण्डल की अलौकिक एवं अनिर्वचनीय देदीप्यमान प्रभा से वे इतने प्रभावित हुए कि कुछ भी न बोल सके। वे असमंजस में पड़ गये और सोचने लगे–'क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण ही तो साक्षात् रूप में नहीं बैठे हैं? नहीं, शास्त्रोक्त लक्षणानुसार इनमें से यह एक भी नहीं हैं। फिर यह कौन हैं? ऐसी अनुपमेय एवं असाधारण शान्त मुख मुद्रा तो वीतराग की ही हो सकती है। तो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या यही सर्वज्ञ हैं? ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वज्ञ की तो मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। वस्तुतः यदि यही सर्वज्ञ हैं तो मैंने यहाँ त्वरा में आकर बहुत बड़ी गलती की है। मैं तो इनके समक्ष तेजोहीन हो गया हूँ। मैं इसके साथ शास्त्रार्थ कैसे कर पाऊँगा। मैं वापस भी नहीं लौट सकता। लौट जाता हूँ तो आज तक की समुपार्जित अप्रतिम निर्मल यशोकीर्ति मिट्टी में मिल जाएगी। तो मैं क्या करूँ?' इन्द्रभूति इस प्रकार की उधेड़बुन में संलग्न थे।

उसी समय अन्तर्यामी सर्वज्ञ महावीर ने अपनी योजनगामिनी वाणी से सम्बोधित करते हुए कहा–"भो इन्द्रभूति गौतम! तुम आ गये?" अपना नाम सुनते ही इन्द्रभूति चौंक पड़े। अरे! इन्होंने मेरा नाम कैसे जान लिया? मेरी तो इनके साथ कोई जान-पहचान भी नहीं है, कोई पूर्व परिचय भी नहीं है। अहँ प्रताड़ित होने से पुनः संकल्प-विकल्प की दोला में डोलने लगे। चाहे मैं किसी को न जानूं, पर मुझे कौन नहीं जानता? सूर्य की पहचान किसे नहीं होती? मेरे अगाध वैदुष्य की धाक सारे देश में अमिट रूप से छाई हुई है, खैर।

सन्देह-निवारण–मेरे मन में प्रारम्भ से ही यह संशय शल्य की तरह रहा है कि 'पाँच भूतों का समूह ही जीव है अथवा चेतना शक्ति सम्पन्न जीव तत्व कोई अन्य है।' मैं अनेक शास्त्रों का अध्येता हूँ, फिर भी इस विषय में प्रामाणिक निर्णय पर नहीं पहुँच पाया हूँ। यदि मेरे इस संशय का ये निवारण कर दें तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान लूँगा और सर्वदा के लिए इनको अपना लूँगा।

अतिशय ज्ञानी महावीर ने इन्द्रभूति के मनोगत भावों को समझकर तत्काल ही कहा–

हे गौतम! तुम्हें यह संदेह है कि जीव है या नहीं? यह तुम्हारा संशय वेद/बृहदारण्य उपनिषद् की श्रुति–"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न च प्रेत्य संज्ञास्ति–" पर आधारित है। अर्थात् इन भूतों से विज्ञानघन समुत्थित होता है और भूतों के नष्ट हो जाने पर वह भी नष्ट हो जाता है। परलोक जैसी कोई चीज नहीं है।

महावीर ने पुनः स्पष्ट करते हुए कहा–इस श्रुतिपद का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण ही तुम्हें यह भ्रान्ति हुई है। इसका वस्तुतः अर्थ यह है कि आत्मा में प्रति समय नई-नई ज्ञान-पर्यायों की उत्पत्ति होती है और पूर्व की पर्यायें विलीन हो जाती हैं। जैसे घट का चिन्तन करने पर चेतना में घट रूप पर्याय का आविर्भाव होता है और दूसरे क्षण पट का ध्यान करने पर घट रूप पर्याय नष्ट हो जाती है और पट रूप पर्याय उत्पन्न हो जाती है। आखिर ये ज्ञान रूप चेतन पर्यायें किसी सत्ता की ही होंगी? यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथ्वी, अप, तेजस् आदि पाँच भूतों से न होकर जड़-चेतन रूप समस्त ज्ञेय पदार्थों से है। जैसे प्राण के निकल जाने पर पाँच भूत तो ज्यों के त्यों बने रहते हैं। तुम ही विचार करो कि वह कौन सी सत्ता है जिसके निकल जाने से पंच भूतात्मक काया निश्चेष्ट हो जाती है तथा इन्द्रियाँ सामर्थ्यहीन हो जाती हैं। इन्द्रभूति! चेतना शक्ति चित्त रूप है। वह मरणधर्मा नहीं है। शरीर के नष्ट होने से चेतना नष्ट नहीं होती है। पुनः, विचारक के आधार पर ही विचार की सत्ता है। यदि विचार है तो विचारक होगा ही। अपने अस्तित्व के प्रति सन्देहशील होना यह भी एक विचार है और यह विचार कोई विचारशील सत्ता ही कर सकती है, अतः आत्मा की सत्ता तो स्वयं सिद्ध है। घट यह नहीं सोचता की मेरी सत्ता है या नहीं? अतः तुम्हारी शंका ही आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती है। फिर तुम्हारे वेद-श्रुतियों के प्रमाणों से भी यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है।

दीक्षा–सर्वज्ञ महावीर के मुख से इस तर्क प्रधान और प्रामाणिक विवेचना को सुनकर इन्द्रभूति के मनः स्थित संशय शल्य पूर्णतः नष्ट हो गया। अन्तर मानस स्फटिकवत् विशुद्ध हो गया और प्रभु को वास्तविक सर्वज्ञ मानकर, नतमस्तक एवं करबद्ध होकर कहा – 'स्वामिन्! मैं इसी क्षण से आपका हो गया हूँ। अब आप मुझे पांच सौ शिष्यों के परिवार के साथ अपना शिष्य बनाकर हमारे जीवन को सफल बनावें।' प्रभु ने उसी समय ईस्वी पूर्व ५५७ में वैशाख सुदि ११ के दिन पचास वर्षीय इन्द्रभूति को अपने छात्र-परिवार के साथ प्रव्रज्या प्रदान कर अपना प्रथम शिष्य घोषित किया।

अन्य १० यज्ञाचार्यों की दीक्षा–

"इन्द्रभूति छात्र-परिवार सहित सर्वज्ञ महावीर का शिष्यत्व अंगीकार कर निर्ग्रन्थ/श्रमण बन गये हैं।" संवाद बिजली की तरह यज्ञ मण्डप में पहुँचे तो शेष दसों याज्ञिक आचार्य किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये। सहसा उनको इस संवाद पर विश्वास ही नहीं हुआ। वे कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि देश का इन्द्रभूति जैसा अप्रतिम दुर्धर्ष दिग्गज विद्वान जो सर्वदा अपराजेय रहा वह किसी निर्ग्रन्थ से पराजित होकर उसका शिष्य बन सकता है। सब हतप्रभ से हो गये। किन्तु, अग्निभूति चुप न रह सका और वह आग-बबूला होकर, अपने अग्रज को बन्धन से छुड़ाने के लिए अपने छात्र-समुदाय के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिये गर्व के साथ समवसरण की ओर चल पड़ा। महावीर के समक्ष पहुँचते ही उसने भी अपनी शंका का समाधान हृदयंगम कर छात्र परिवार सहित उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इस प्रकार क्रमशः वायुभूति आदि नवों कर्मकाण्डी उद्भट विद्वान् महावीर के पास पहुँचे और उनसे अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने छात्र-परिवार सहित प्रभु के शिष्य बन गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणधर-पद—आवश्यक चूर्णि और महावीर चरित्र के अनुसार इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् आचार्य प्रभु का शिष्यत्व अंगीकार करने के पश्चात् क्रमश: भगवान महावीर के समक्ष कुछ दूर पर अंजलिबद्ध नत-मस्तक होकर खड़े हो गए। उस समय कुछ क्षणों के लिये देवों ने वाद्य निनाद बन्द किये ओर जगद्वन्द्य महावीर ने अपने कर-कमलों से उनके शिरों पर सौगन्धिक रत्न चूर्ण डाला और इन्द्रभूति आदि सब को सम्बोन्धित करेत हुए कहा–"मैं तुम सब को तीर्थ की अनुज्ञा देता हूँ, गणधर पद प्रदान करता हूँ।' इस प्रकार भगवान् ने अपने तीर्थ/संघ की स्थापना कर ग्यारह गणधर घोषित किये। इनमें प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। ग्यारह आचार्यों का विशाल शिष्य समुदाय उन्हीं का रहा, जिनकी कुल संख्या ४४०० थी।

द्वादशांगी की रचना

शिष्यत्व अंगीकार करने के पश्चात् गणधर इन्द्रभूति श्रमण भगवान महावीर के समीप आये और सविनय वन्दना नमस्कार के पश्चात् जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किया –

"भंते किं तत्त्वम्! भगवन्! तत्त्व क्या है?"

महावीर ने कहा –

"उप्पन्नेइ वा" उत्पाद/उत्पन्न होता है। इस उत्तर से इन्द्रभूति की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। वे सोचने लगे कि यदि उत्पन्न ही उत्पन्न होता रहा तो सीमित पृथ्वी में उसका समावेश कैसे होगा? अत: पुन: प्रश्न किया –

"भंते! किं तत्त्वम्" भगवन्! तत्त्व क्या है?

महावीर ने कहा –

"बिगयेइ वा" विगय नष्ट होता है।

इन्द्रभूति का मानस पुन: संशयशील हो उठा। सोचने लगे – यदि विगय ही विगय होगा, तो एक दिन सब नष्ट हो जाएगा, संसार पूर्णत: रिक्त हो जाएगा। अत: संशय-निवारण हेतु पुन: प्रश्न किया–

"भंते! किं तत्त्वम्।" भगवन्! तत्त्व क्या है?

पुन: महावीर ने उत्तर दिया –

"धुएत्ति वा" ध्रुव /शाश्वत रहता है।

यह उत्तर सुनते ही इन्द्रभूति को समाधान मिल गया, उनका संशय दूर हो गया।

इस त्रिपदी का निष्कर्ष यह है कि पर्याय दृष्टि में प्रत्येक वस्तु में उत्पाद और व्यय/नाश होता है, किन्तु द्रव्य दृष्टि से जो कुछ है वह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है।

यह त्रिपदी प्रत्येक पदार्थ/वस्तु पर घटित होती है। विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है कि जिस पर यह घटित न हो। प्रत्येक सत् वस्तु द्रव्य रूप से सदैव नित्य है, शाश्वत है। द्रव्य यदि द्रव्य रूपता का परित्याग कर दे, तो जीव जीव नहीं रह सकता और अजीव अजीव नहीं रह सकता। यदि सत् असत् रूप में परिणत हो जाए तो सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी। चेतन हो अथवा जड़, किन्तु इस सीमा रेखा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसे देखिये – एक घड़ा है, वह फूट गया। घट का रूप नष्ट हो गया, ठीकरियों के रूप में उत्पत्ति हो गई, पर उसकी मिट्टी ध्रुव है। मिट्टी पहले भी थी और अब भी है। पुन: देखिये – दूध का रूप विनष्ट होने पर दधि रूप की उत्पत्ति है, तदपि गोरस कायम रहता है, शाश्वत रहता है।

इस त्रिपदी को हृदयंगम कर, चिन्तन-मनन पूर्वक अवगाहन कर, इन्द्रभूति ने इसी त्रिपदी को माध्यम बनाया और भगवान् ने जो-जो अर्थ प्रकट किये उन सब को सूत्र-बद्ध कर द्वादशांगी गणिपिटक की रचना की। इसीलिए शास्त्रों में गणधरों को द्वादशांगी निर्माता कहा जाता है।

गणधर-पद – जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध नहीं कर पाता, विरले व्यक्ति हो बीस स्थानक के पदों की विशिष्टतम एवं उत्कट साधना कर तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करते हैं वैसे ही सामान्य प्राणी गणधर नाम-कर्म का बन्ध नहीं कर पाता, अपितु इने-गिने उत्कृष्टतम साधक ही बीस स्थानक पदों की उत्कट आराधना/अनुष्ठान कर गणधर नाम-कर्म का उपार्जन करते हैं। इस पद की प्राप्ति अनेक भवों से समुपार्जित महापुण्य के उदय में आने पर ही होती है। जिस प्रकार तीर्थंकर पद विशिष्ट अतिशयों का बोधक है उसी प्रकार गणधर पद भी विशिष्ट अतिशयों/लब्धिसिद्धियों का द्योतक है। इन्द्रभूति की अनेक जन्मों की उत्कृष्ट साधना थी कि इस भव में उस प्रकृष्ट पुण्यराशि के उदय में आने के कारण दीक्षा ग्रहण करते ही तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर और द्वादशांगी निर्माता बनने का अविचल सौभाग्य प्राप्त कर सके।

इन्द्रभूति का व्यक्तित्व– दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम ने प्रतिज्ञा की कि यावज्जीवन मैं षष्ठ भक्त तप करूंगा, अर्थात् बिना चूक/अन्तराल के दो दिन का उपवास, एक दिन एकासन में पारणा (एक समय भोजन) और पुन: दो दिन का उपवास करता रहूंगा। और, वे अप्रमत्त होकर उत्कट संयम पथ/साधना मार्ग पर चलने लगे। वे प्रतिदिन भगवान् महावीर की एक प्रहर धर्मदेशना के पश्चात् समवसरण में सिंहासन के पाद-पीठ पर बैठ कर एक प्रहर तक देशना देते।

गौतम की विशिष्ट जीवनचर्या, दुष्कर साधना और बहुमुखी व्यक्तित्व का वर्णन भगवतीसूत्र और उपासकदशांग सूत्र में इस प्रकार प्राप्त होता है :–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार उग्र तपस्वी थे। दीप्त तपस्वी कर्मों को भस्मसात करने में अग्नि के समान प्रदीप्ततप करने वाले थे। तप्त तपस्वी थे अर्थात् जिनकी देह पर तपश्चर्या की तीव्र झलक व्याप्त थी। जो कठोर एवं विपुल तप करने वाले थे। जो उराल-प्रबल साधना में सशक्त थे। धारगुण-परम उत्तम जिनकी धारण करने में अद्भुत शक्ति चाहिए – ऐसे गुणों के धारक थे। प्रबल तपस्वी थे। कठोर ब्रह्मचर्य के पालक थे। दैहिक सार-सम्भाल या सजावट से रहित थे। विशाल तेजोलेश्या को अपने शरीर के भीतर समेटे हुए थे। ज्ञान की अपेक्षा से चतुर्दश पूर्वधारी और चार ज्ञान – मति, श्रुत, अवधि और मनपर्यव ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षर सन्निपात जैसी विविध (२८) लब्धियों के धारक थे। महान् तेजस्वी थे। वे भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप ऊर्ध्वजानु और अधो सिर होकर बैठते थे। ध्यान कोष्टक अर्थात सब और से मानसिक क्रियाओं का अवरोध कर अपने ध्यान को एक मात्र प्रभु के चरणारविन्द में केन्द्रित कर बैठते थे। बेले-बेले निरन्तर तप का अनुष्ठान करते हुए संयमाराधना तथा तन्मूलक अन्यान्य तपश्चरणों द्वारा अपनी आत्मा को भावित/संस्कारित करते हुए विचरण करते थे।

प्रथण प्रहर में स्वाध्याय करते थे। दूसरे प्रहर में देशना देते थे; ध्यान करते थे। तीसरे प्रहर में पारणे के दिन अत्वरित, स्थिरता पूर्वक, अनाकुल भाव से मुखवस्त्रिका, वस्त्रपात्र का प्रतिलेखन/प्रमार्जन कर, प्रभु की अनुमति प्राप्त कर, नगर या ग्राम में धनवान्, निर्धन और मध्यम कुलों में क्रमागत – किसी भी घर को छोड़े बिना भिक्षाचर्या के लिए जाते थे। अपेक्षित भिक्षा लेकर, स्वस्थान पर आकर, प्रभु को प्राप्त भिक्षा दिखाकर और अनुमति प्राप्त कर गोचरी/भोजन करते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्रभूति अतिशय ज्ञानी होकर भी परम गुरु-भक्त और आदर्श शिष्य थे।

ज्ञाताधर्मकथा में आर्य सुधर्म के नामोल्लेख के साथ जो गणधरों के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया गया है उनमें गणधर इन्द्रभूति का भी समावेश हो जाता है। वर्णन इस प्रकार है :–

''वे जाति सम्पन्न (उत्तम मातृपक्ष वाले) थे। कुल सम्पन्न (उत्तम पितृपक्ष वाले) थे। बलवान, रूपवान, विनयवान, ज्ञानवान, क्षायिक, सम्यक्त्व, सम्पन्न, साधन सम्पन्न थे। ओजस्वी थे। तेजस्वी थे। वर्चस्वी थे। यशस्वी थे। क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रियों का दमन कर चुके थे। निद्रा और परीषहों को जीतने वाले थे। जीवित रहने की कामना और भृत्यु के भय से रहित थे। उत्कट तप करने वाले थे। उत्कृष्ट संयम के धारक थे। करण सत्तरी और चरण सत्तरी का पालन करने में और इन्द्रियों का निग्रह करने वालों में प्रधान थे। आर्जव, मार्दव, लाघव/कौशल, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता के धारक थे। विद्या-प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं एवं मन्त्रों के धारक थे। प्रशस्त ब्रह्मचर्य के पालक थे। वेद और नय शास्त्र के निष्णात थे। भांति-भांति के अभिग्रह करने में कुशल थे। उत्कृष्टतम सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के धारक/पालक थे। घोर परीषहों को सहन करने वाले थे। घार तपस्वी/साधक थे। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य के पालक थे। शरीर-संस्कार के त्यागी थे। विपुल तेजालेश्या को अपने शरीर में समाबिष्ट करके रखने वाले थे। चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे और चार ज्ञान के धारक थे।''

प्रश्नोत्तर

गौतम जब ''ऊर्ध्वजानु अध: शिर:'' आसन से ध्यान कोष्टक/ध्यान में बैठ जाते थे अर्थात् बहिर्मुखी द्वारों/विचारों को बन्द कर अन्तर् में चिन्तनशील हो जाते थे, उस समय धर्मध्यान और शुक्लध्यान की स्थिति में उनके मानस में जो भी प्रश्न उत्पन्न होते थे, जो कुछ भी जिज्ञासाएं उभरती थीं, कौतुहल जागृत होता था, तो वे अपने स्थान से उठकर भगवान् के निकट जाते, वन्दन-नमस्कार करते और विनयावनत होकर शान्त स्वर में पूछते – भगवन्! इनका रहस्य क्या है? इस प्रसंग का सुन्दरतम वर्णन भगवती सूत्र में प्राप्त होता हैं। देखिये –

''तत्पश्चात् जातश्राद्ध (प्रवृत्त हुई श्रद्धा वाले), जात संशय, जात कौतूहल, समुत्पन्न श्रद्धा वाले, समुत्पन्न संशय वाले, समुत्पन्न कुतूहल वाले गौतम अपने स्थान से उठकर खड़े होते हैं। उत्थित होकर जिस ओर श्रमण भगवान महावीर हैं उस ओर आते हैं। उनके निकट आकर प्रभु की उनकी दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। फिर वन्दन-नमस्कार करते हैं। नमन कर वे न तो बहुत पास और न बहुत दूर भगवान् के समक्ष विनय से ललाट पर हाथ जोड़े हुए, भगवान् के वचन श्रमण करने की इच्छा से उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले।''

और, महावीर ''हे गौतम!'' कह कर उनकी जिज्ञासाओं – संशयों, शंकाओं का समाधान करते हैं। गौतम भी अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त कर, कृत-कत्य होकर भगवान् के चरणों में पुन: विनयपूर्वक कह उठते हैं – ''सेवं भंते! सेवं भंते! तहमेयं भंते!'' अर्थात् प्रभो! आपने जैसा कहा है वह ठीक है, वह सत्य है। मैं उस पर श्रद्धा एवं विश्वास करता हूँ। प्रभु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूंज वस्तुत: प्रश्नोत्तर की एक आदर्श पद्धति है।

स्वयं चार ज्ञान के धारक और अनेक विद्याओं के पारंगत होने पर भी गौतम अपनी जिज्ञासा को शान्त करने, नई-नई बातें जानने और अपनी शंकाओं का निवारण करने के लिये स्वयं के पाण्डित्य/ज्ञान का उपयोग करने के स्थान पर प्रभु महावीर से ही प्रश्न पूछते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न छोटा हो या मोटा, सरल हो या कठिन, इस लोक सम्बन्धी हो या परलोक सम्बन्धी, वर्तमान-कालीन हो या भूत-भविष्यकाल से सम्बन्धित, दूसरे से सम्बन्धित हो या स्वयं से सम्बन्धित, एक-एक के सम्बन्ध में भगवान् के श्रीमुख से समाधान प्राप्त करने में ही गौतम आनन्द का अनुभव करते थे।

वस्तुतः इन प्रश्नों के पीछे एक रहस्य भी छिपा हुआ है। ज्ञानी गौतम को प्रश्न करने या समाधान प्राप्त करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी। वे तो प्रश्न इसलिये करते थे कि इस प्रकार की जिज्ञासाएँ अनेकों मानस में होती हैं किन्तु प्रत्येक श्रोता प्रश्न पूछ भी नहीं पाता या प्रश्न करने का उसमें सामर्थ्य नहीं होता। इसीलिए गौतम अपने माध्यम से श्रोतागणों के मनःस्थित शंकाओं का समाधान करने के लिए ही प्रश्नोत्तरों की परिपाटी चलाते थे, ऐसी मेरी मान्यता है।

विद्यमान आगमों में चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि की रचना तो गौतम के प्रश्नों पर ही आधारित है। विशालकाय पंचम अंग व्याख्या-प्रज्ञप्ति (प्रसिद्ध नाम भगवती सूत्र) जिसमें ३६००० प्रश्न संकलित हैं उनमें से कुछ प्रश्नों को छोड़कर शेष सारे प्रश्न गौतम-कृत ही हैं।

गौतम के प्रश्न, चर्चा एवं संवादों का विवरण इतना विस्तृत है कि उसका वर्गीकरण करना भी सरल नहीं है। भगवती, औपपातिक, विपाक, राज-प्रश्नीय, प्रज्ञापना आदि में विविध विषयक इतने प्रश्न हैं कि इनके वर्गीकरण के साथ विस्तृत सूची बनाई जाय तो कई भागों में कई शोध-प्रबन्ध तैयार हो सकते है।

सामान्यतया गौतम-कृत प्रश्नों को चार विभागों में बांट सकते हैं:–

१. अध्यात्म, २. कर्मफल, ३. लोक और ४. स्फुट।

प्रथम अध्यात्म-विभाग में इन प्रश्नों को ले सकते हैं – आत्मा, स्थिति, शाश्वत-अशाश्वत, जीव, कर्म, कषाय, लेश्या, ज्ञान, ज्ञानफल, संसार, मोक्ष, सिद्ध आदि। इनमें केशी श्रमण और उदक-पेढ़ाल के संवाद भी सम्मिलित कर सकते हैं।

दूसरे विभाग में किसी को सुखी, किसी को दुःखी, किसी को समृद्धि-सम्पन्न और किसी निपट निर्धन को देखकर उसके शुभाशुभ कर्मो को जानकारी आदि ग्रहण कर सकते हैं।

तीसरे विभाग में लोकस्थिति, परमाणु, देव, नारक, षट्काय, जीव, अजीव, भाषा, शरीर आदि और सौरमण्डल के गति विषयक आदि ले सकते हैं।

चौथे विभाग में स्फुट प्रश्नों का समावेश कर सकते हैं।

उदाहरण के तौर पर सामान्य से दो प्रश्नोत्तर प्रस्तुत हैं :–

प्रश्न – भगवन्! क्या लाघव, अल्प इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमण-निर्गन्थों के लिये प्रशस्त हैं?

उत्तर – हाँ, गौतम! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता श्रमण निर्गन्थों के लिये प्रशस्त/श्रेयस्कर है।

प्रश्न – क्या कांक्षा प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण- निर्गन्थ अन्तकर अथवा चरम शरीरी होता है? अथवा पूर्वावस्था में अधिक मोहग्रस्त होकर विहरण करे और फिर संवृत्त होकर मृत्यु प्राप्त करे तो तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता हैं?

उत्तर – हाँ, गौतम! कांक्षा-प्रदोष नष्ट हो जाने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ यावत् सब दुःखों का अन्त करता है। (भगवती सूत्र १ शतक, ९ उद्देशक, सूत्र – १७, १९)

आगमों में गौतम से सम्बन्धित अंश

आगम-साहित्य में गणधर गौतम से सम्बन्धित प्रसंग भी बहुलता से प्राप्त होते हैं, उनमें से कतिपय संस्मरणीय प्रसंग यहां प्रस्तुत हैं।

आनन्द श्रावक :

प्रभु महावीर के तीर्थ के गणाधिपति एवं सहस्राधिक शिष्यों के गुरू होते हुए भी गणधर गौतम गोचरी/भिक्षा के लिये स्वयं जाते थे। एक समय का प्रसंग है :–

प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे। तीसरे प्रहर में भगवान् की आज्ञा लेकर गौतम भिक्षा के लिये निकले और गवेषणा करते हुए गाथापति आनन्द श्रावक के घर पहुँचे। आनन्द श्रावक भगवान् महावीर का प्रथम श्रावक था। उपासक के बारह व्रतों का पालन करते हुए ग्यारह प्रतिमाएँ भी वहन की थीं। जीवन के अन्तिम समय में उसने आजीवन अनशन ग्रहण कर रखा था। उस स्थिति में गौतम उनसे मिलने गए। आनन्द ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नमन किया और पूछा – प्रभो! क्या गृहवास में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

गौतम – हो सकता है।

आनन्द – भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है। मैं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशाओं में पांच सौ-पांच सौ योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र, उत्तर में हिमवान पर्वत, ऊर्ध्व दिशा में सौधर्म कल्प और अधो दिशा में प्रथम नरक भूमि तक का क्षेत्र देखता हूँ।

गौतम – गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है, किन्तु इतना विशाल नहीं। तुम्हारा कथन भ्रान्तियुक्त एवं असत्य है। अतः असत्भाषण प्रवृत्ति की आलोचना/प्रायश्चित्त करो।

आनन्द-भगवन्! क्या सत्य कथन करने पर प्रायश्चित्त ग्रहण करना पड़ता है?

गौतम – नहीं।

आनन्द – तो, भगवन! सत्य-भाषण पर आलोचना का निर्देश करने वाले आप ही प्रायश्चित करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द का उक्त कथन सुनकर गौतम असमंजस में पड़ गये। स्वयं के ज्ञान का उपयोग किये बिना ही त्वरा से प्रभु के पास आये और सारा घटनाक्रम उसके सन्मुख प्रस्तुत कर पूछा –

भगवन्! उक्त आचरण के लिये श्रमणोपासक आनन्द को आलोचना करनी चाहिए या मुझे?

महावीर ने कहा — गौतम! गाथापति आनन्द ने सत्य कहा है, अत: तुम ही आलोचना करो और श्रमणोपासक आनन्द से क्षमा याचना भी।

गौतम 'तथास्तु' कह कर, लाई हुई गोचरी किये बिना ही उलटे पैरों से लौटे और आनन्द श्रावक से अपने कथन पर खेद प्रकट करते हुए क्षमा याचना की। – उपासकदशा अ० १ सू. ८० से ८७

इस घटना से एक तथ्य उभरता है कि गुरू गौतम कितने निश्छल, निर्मल, निर्मद, निरभिमानी थे। उन्हें तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं हुआ कि मैं प्रभु का प्रथम गणधर होकर एक उपासक के समक्ष अपनी भूल कैसे स्वीकार करूँ एवं श्रावक से कैसे क्षमा मांगू। यह उनके साधना की, निरभिमानता की कसौटी/अग्नि परीक्षा थी, जिसमें वे खरे उतरे।

अष्टापद तीर्थ यात्रा की पृष्ठ-भूमि

शाल, महाशाल, गागलि –

उत्तराध्ययन सूत्र के द्रुमपत्रक नामक दशवें अध्ययन की टीका करते हुए टीकाकारों ने लिखा है :–

पृष्ठचम्पा नगरी के राजा थे शाल और युवराज थे महाशाल। दोनों भाई थे। इनकी बहन का यशस्वती, बहनोई का पिठर और भानजे का नाम गागलि था।

भगवान महावीर की देशना सुनकर दोनों भाइयों – शाल महाशाल ने दीक्षा ग्रहण करली थी और कांपिल्यपुर से अपने भानजे गागलि को बुलवाकर राजपाट सौंप दिया था। राजा गागली ने अपने माता-पिता को भी पृष्ठचम्पा बुलवा लिया था।

एकदा भगवान चम्पानगरी जा रहे थे। तभी शाल और महाशाल ने स्वजनों को प्रतिबोधित करने के लिये पृष्ठचम्पा जाने की इच्छा व्यक्त की। प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर गौतम स्वामी के नेतृत्व में श्रमण शाल और महाशाल पृष्ठचम्पा गये। वहाँ के राजा गागलि और उसके माता-पिता (यशस्वती, पिठर) को प्रतिबोधित कर दीक्षा प्रदान की। पश्चात वे सब प्रभु की सेवा में चल पड़े। मार्ग में चलते-चलते शाल और महाशाल गौतम स्वामी के गुणों का चिन्तन और गागलि तथा उसके माता-पिता शाल एवं महाशाल मुनियों की परोपकारिता का चिन्तन करने लगे। अध्यवसायों की पवित्रता बढ़ने लगी और पांचों निर्ग्रन्थों ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। सभी भगवान के पास पहुँचे। ज्योंहि शाल महाशाल और पांचों मुनिगण केवलियें की परिषद में जाने लगे तो गौतम ने उन सबको रोकते/सम्बोधित करते हुए कहा – ''पहले त्रिलोकीनाथ भगवान की वन्दना करें।''

उसी क्षण भगवान ने कहा – गौतम! ये सब केवली हो चुके हैं, अत: इनकी आशातना मत करो।

शंकाकुल मानस —

गौतम ने उनसे क्षमायाचना की; किन्तु उनका मन अधीरता वश आकुल-व्याकुल हो उठा और सन्देहों से भर गया वे सोचने लगे– ''मेरे द्वारा दीक्षित अधिकांशत: शिष्य केवलज्ञानी हो चुके हैं, परन्तु मुझे अभी तक केवलज्ञान नहीं हुआ। क्या मैं सिद्ध पद प्राप्त नही कर पाऊँगा?'' ''मोक्षे भवे च सर्वत्र नि:स्पृहो मुनिसत्तम:'' मोक्ष और संसार दोनों के प्रति पूर्ण रूपेण नि:स्पृह/अनासक्त रहने वाले गौतम भी मैं चरम शरीरी (इसी देह से मोक्ष जाने वाला) हूँ या नही'', सन्देह-दोला में झूलने लगे।

एकदिन गौतम स्वामी कहीं बाहर/अन्यत्र गये हुए थे, उस समय भगवान महावीर ने अपनी धर्मदेशना में अष्टापद तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए कहा– 'जो साधक स्वयं की आत्मलब्धि के बल पर अष्टापद पर्वत पर जाकर चैत्यस्थ जिन-बिम्बों की वन्दना कर, एक रात्रि वहीं निवास करे, तो वह निश्चयत: मोक्ष का अधिकारी बनता है और इसी भव में मोक्ष को प्राप्त करता है।'

बाहर से लौटने पर देवों के मुख से जब उन्होंने उक्त महावीर वाणी को सुना तो उनके चित्त को किंचित सन्तुष्टि का अनुभव हुआ। 'चरम शरीरी हूँ या नही'' परीक्षण का मार्ग तो मिला, क्यों न परीक्षण करूँ? सर्वज्ञ की वाणी शत-प्रतिशत विशुद्ध स्वर्ण होती है, इसमें शंका को स्थान ही कहाँ?''

अष्टापद तीर्थ की यात्रा —

तत्पश्चात् गौतम भगवान के पास आये और अष्टापद तीर्थ यात्रा करने की अनुमति चाही। भगवान ने भी गौतम के मन में स्थित मोक्ष-कामना जानकर और विशेष लाभ का कारण जानकर यात्रा की अनुमति प्रदान की। गौतम हर्षोत्फुल्ल होकर अष्टापद की यात्रा के लिये चले।

शीलांकाचार्य (१०वीं शताब्दी) ने चउप्पन्नमहापुरुष चरियं (पृष्ठ ३२३) के अनुसार भगवान महावीर ने १५०० तापसों को प्रतिबोध देने के लिये गौतम को अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने का निर्देश दिया और गौतम जिन-बिम्बों के दर्शनों की उमंग लेकर चल पड़े।

गुरु गौतम आत्मा-साधना से प्राप्त चारण लब्धि आदि अनेक लब्धियों के धारक थे, आकस्मिक बल एवं चारणलब्धि (आकाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में गमन करने की शक्ति) से वे वायुवेग की गति से कुछ ही क्षणों में अष्टापद की उपत्यका में पहुँच गये।

इधर कौडिन्य, दिन्न (दत्त) और शैवाल नाम के तीन तापस भी 'इसी भव में मोक्ष-प्राप्ति होगी या नहीं' का निश्चय करने हेतु अपने-अपने पांच सौ-पांच सौ तापस शिष्यों के साथ अष्टापद पर्वत पर चढ़ने के लिये क्लिष्ट तप कर रहे थे।

इनमें से कौडिन्य उपवास के अनन्तर पारणा कर फिर उपवास करता था। पारणा में मूल, कन्द आदि का आहार करता था। वह अष्टापद पर्वत पर चढ़ा अवश्य, किन्तु एक मेखला/सोपना से आगे न जा सका था।

दिन्न (दत्त) तापस दो-दो उपवास का तप करता था और पारणा में नीचे पड़े हुए पीले पत्ते खा कर रहता था। वह अष्टापद की दूसरी मेखला तक ही पहुँच पाया था।

शैवाल तापस तीन-तीन उपवास की तपस्या करता था। पारणा में सूखी शैवाल (सेवार) खा कर रहता था। वह अष्टापद की तीसरी मेखला ही चढ़ पाया था।

तीन सोपान (पगोथियों) से ऊपर चढ़ने की उनमें शक्ति नहीं थी। पर्वत की आठ मेखलायें थी। अन्तिम/अग्रिम मेखला तक कैसे पहुँचा जाए? इसी उधेड़बुन में वे सभी तापस चिन्तित थे।

इतने में उन तपस्वी जनों ने गौतम स्वामी को उधर आते देखा। इनकी कान्ति सूर्य के समान तेजोदीप्त थी और शरीर सप्रमाण एवं भरावदार था। मदमस्त हाथी की चाल से चलते हुए आ रहे थे। उन्हें देखकर तापसगण ऊहापोह करने लगे "हम महातपस्वी और दुबले-पतले शरीर वाले भी ऊपर न जा सके, तो यह स्थूल शरीर वाला श्रमण कैसे चढ़ पाएगा?"

वे तपस्वी शंका-कुशंका के घेरे में पड़े हुए सोच ही रहे थे कि इतने में ही गुरू गौतम करोलिया के जाल के समान चारों तरफ फैली हुई आत्मिक-बल रूपी सूर्य किरणों का आधार लेकर जंघाचारण लब्धि से वेग के साथ क्षण मात्र में अष्टापद पर्वत की अन्तिम मेखला पर पहुँच गए। तापसों के देखते-देखते ही अदृश्य हो गए।

यह दृश्य देखकर तापसगण आश्चर्य चकित होकर विचारने लगे — "हमारी इतनी विकट तपस्या और परिश्रम भी सफल नहीं हुआ, जबकि यह महापुरुष तो खेल-खेल में ही ऊपर पहुंच गया। निश्चय ही इस महर्षि महायोगी के पास कोई महाशक्ति अवश्य होनी चाहिए।" उन्होंने निश्चय किया "ज्योंही ये महर्षि नीचे उतरेंगे हम उनके शिष्य बन जायेंगे। इनकी शरण अंगीकार करने से हमारी मोक्ष की आकांक्षा अवश्य ही सफलीभूत होगी।"

इधर, गौतम स्वामी ने "मन के मनोरथ फलें हो" ऐसे उल्लास से अष्टापद पर्वत पर चक्रवर्ती भरत द्वारा निर्मापित एवं तोरणों से सुशोभित तथा इन्द्रादि देवताओं से पूजित-अर्चित नयनाभिराम चतुर्मुखी प्रासाद/मन्दिर में प्रवेश किया। निज-निज काय / देहमान के अनुसार चारों दिशाओं में ४, ८, १०, २ की संख्या में विराजमान चौबीस तीर्थंकरों के रत्नमय बिम्बों को देखकर उनकी रोम-राजि विकसित हो गई और हर्षोत्फुल्ल नयनों से दर्शन किये। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक वन्दन-नमन, भावार्चन किया। मधुर एवं गम्भीर स्वरों में तीर्थंकरों की स्तवना की। दर्शन-वन्दन के पश्चात् सन्ध्या हो जाने के कारण तीर्थ-मन्दिर के निकट ही एक सघन वृक्ष के नीचे शिला पर ध्यानस्थ होकर धर्म जागरण करने लगे।

वज्रस्वामी के जीव को प्रतिबोध —

धर्म-जागरण करते समय अनेक देव, असुर और विद्याधर वहाँ आये, उनकी वन्दना की और गौतम के मुख से धर्मदेशना भी सुनकर कृतकृत्य हुए।

इसी समय शक्र का दिशापालक वैश्रमण देव, (शीलांकाचार्य के अनुसार गन्धर्वरति नामक विद्याधर) जिसका जीव भविष्य में दशपूर्वधर वज्र स्वामी बनेगा, तीर्थ की वन्दना करने आया। पुलकित भाव से देव-दर्शन कर गौतम स्वामी के पास आया और भक्ति पूर्वक वन्दन किया। गुरु गौतम के सुगठित, सुदृढ़, सबल एवं हृष्टपुष्ट शरीर को देखकर विचार करने लगा — "कहाँ तो शास्त्र-वर्णित कठोर तपधारी श्रमणों के दुर्बल, कृशकाय ही नहीं, अपितु अस्थि-पंजर का उल्लेख और कहाँ यह हृष्टपुष्ट एवं तेजोधारी श्रमण! ऐसा सुकुमार शरीर तो देवों का भी नहीं होता! तो, क्या यह शास्त्रोक्त मुनिधर्म का पालन करता होगा? या केवल परोपदेशक ही होगा?"

गुरु गौतम उस देव के मन में उत्पन्न भावों/विचारों को जान गए और उसकी शंका को निर्मूल करने के लिये पुण्डरीक कण्डरीक का जीवन-चरित्र (ज्ञाता धर्म कथा १६ वां अध्ययन) सुनाया और उसके माध्यम से बतलाया – महानुभाव! न तो दुर्बल, अशक्त और निस्तेज शरीर ही मुनित्व का लक्षण बन सकता है और न स्वस्थ, सुदृढ़, हृष्टपुष्ट एवं तेजस्वी शरीर मुनित्व का विरोधी बन सकता है। वास्तविक मुनित्व तो शुभध्यान द्वारा साधना करते हुए संयम यात्रा में ही समाहित/विद्यमान है।

वैश्रमण देव की शंका-निर्मूल हो गई और वह बोध पाकर श्रद्धाशील बन गया।

तापसों की दीक्षा : केवलज्ञान –

प्रात:काल जब गौतम स्वामी पर्वत से नीचे उतरे तो सभी तापसों ने उनका रास्ता रोक कर कहा – "पूज्यवर! आप हमारे गुरू हैं और हम सभी आपके शिष्य है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम बोले – तुम्हारे और हमारे सब के गुरू तो तीर्थंकर महावीर हैं।

यह सुनकर वे सभी आश्चर्य से बोले – क्या आप जैसे सामर्थ्यवान के भी गुरू हैं?

गौतम ने कहा – हाँ, सुरासुरों एवं मानवों के पूजनीय, राग-द्वेषरहित सर्वज्ञ महावीर स्वामी जगद्गुरू हैं, वे ही मेरे गुरू हैं।

तापसगण – भगवन्! हमें तो इसी स्थान पर और अभी ही सर्वज्ञ-शासन की प्रर्वज्या प्रदान करने की कृपा करावें।

गौतम स्वामी ने अनुग्रह पूर्वक कौडिन्य, दिन्न और शैवाल को पन्द्रह सौ तापसों के साथ दीक्षा दी और यूथाधिपति के समान सब को साथ लेकर भगवान की सेवा में पहुँचने के लिये चल पड़े। मार्ग में भोजन का समय देखकर गौतम स्वामी ने सभी तापसों से पूछा–तपस्वीजनों! आज आप सब लोग किस आहार से तप का पारणा करना चाहते हैं? बतलाओ।

तापसगण — भगवन्! आप जैसे गुरु को प्राप्त कर हम सभी का अन्त:करण परमानन्द को प्राप्त हुआ है अत: परमान्न/खीर से ही पारणा करावें।

उसी क्षण गौतम भिक्षा के लिये गये और भिक्षा पात्र में खीर लेकर आये। सभी को पंक्ति में बिठाकर,पात्र में दाहिना अंगूठा रखकर अक्षीणमहानसी लब्धि के प्रभाव से सभी तपस्वीजनों को पेट भर कर खीर से पारणा करवाया।

शैवाल आदि ५०० मुनि जन तो गौतम स्वामी के अतिशय एवं लब्धियों पर विचार करते हुए ऐसे शुभध्यानारूढ़ हुए कि खीर खाते-खाते ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गौतम सभी श्रमणों के साथ पुन: आगे बढ़े। प्रभु के समवसरण की शोभा और अष्ट महाप्रातिहार्य देखकर दिन्न आदि ५०० अनगारों को तथा दूर से ही प्रभु के दर्शन, प्रभु की वीतराग मुद्रा देखकर कौडिन्य आदि साधुओं को शुक्लध्यान के निमित्त से केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

समवसरण में पहुँच कर, तीर्थंकर भगवान की प्रदक्षिणा कर सभी नवदीक्षित केवलियों की ओर बढ़ने लगे। गौतम ने उन्हें रोकते हुए कहा – भगवान को वन्दन करो। उसी समय भगवान ने कहा–गौतम! केवलज्ञानियों की आशातना मत करो!

भगवान का वाक्य सुनते ही गौतम स्तब्ध से हो गये। भगवद् आज्ञा स्वीकार कर, गौतम ने मिथ्यादुष्कृत पूर्वक उन सब से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् वे चिन्तन-दोला में हिचकोले खाने लगे। ''क्या मेरी अष्टापद यात्रा निष्फल जाएगी? क्या मैं गुरु-कर्मा हूँ? क्या मैं इस भव में मुक्ति में नहीं जा पाऊँगा?'' यही चिन्ता उन्हें पुन: सताने लगी।

गौतम को आश्वासन—

भगवान अन्तर्यामी थे। वे गौतम के विषाद को एवं अधैर्य युक्त मन को जान गए। उनकी खिन्नता को दूर करने के लिये भगवान ने उनको सम्बोन्धित करते हुए कहा —

हे गौतम! चिरकाल के परिचय के कारण तुम्हारा मेरे प्रति ऊर्णाकट (धान के छिल्के के समान) जैसा स्नेह है। इसीलिए तुम्हें केवलज्ञान नहीं होता। देव, गुरू, धर्म के प्रति प्रशस्त राग होने पर भी वह यथाख्यात चारित्र का प्रतिबन्धक है। जैसे सूर्य के अभाव में दिन नहीं होता, वैसे ही यथाख्यात चारित्र के बिना केवलज्ञान नहीं होता। अत: स्पष्ट है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा उत्कट राग/स्नेह नष्ट होगा, तब तुम्हें अवश्यमेव केवलज्ञान प्राप्त होगा।

पुन: भगवान ने कहा — ''गौतम! तुम खेद-खिन्न मत बनो, अवसाद मत करो। इस भव में मृत्यु के पश्चात्, इस शरीर से छूट जाने पर; इस मनुष्य भव से चित्त होकर, हम दोनों तुल्य (एक समान) और एकार्थ (एक ही प्रयोजन वाले अथवा एक ही लक्ष्य – सिद्धि क्षेत्र में रहने वाले) तथा विशेषता रहित एवं किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित हो जायेंगे।''

अत: तुम अधीर मत बनो, चिन्ता मत करो। और, ''जिस प्रकार शरत्कालीन कुमुद पानी से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तू भी अपने स्नेह को विच्छिन्न (दूर) कर। तू सभी प्रकार के स्नेह का त्याग कर। हे गौतम! समय-मात्र का भी प्रमाद मत कर।''

प्रभु की उक्त अमृतरस से परिपूर्ण वाणी से गौतम पूर्णत: आश्वस्त हो गए। ''मैं चरम शरीरी हूँ'' इस परम सन्तुष्टि से गौतम का रोम-रोम आनन्द सरोवर में निमग्न हो गया।

भगवान् का मोक्षगमन

ईस्वी पूर्व ५२७ का वर्ष था। श्रमण भगवान् महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में था। चातुर्मास के साढ़े तीन माह पूर्ण होने वाले थे। भगवान् जीवन के अन्तिम समय के चिह्नों को पहचान गये। उन्हें गौतम के सिद्धि-मार्ग में बाधक अबरोध को भी दूर करना था, अत: उन्होंने गौतम को निर्देश दिया – गौतम! निकटस्थ ग्राम में जाकर देवशर्मा को प्रतिबोधित करो।

गौतम निश्छल बालक के समान प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य कर देवशर्मा को प्रतिबोध देने के लिये चल पड़े।

इधर, लोकहितकारी श्रमण भगवान् महावीर ने छट्ठ तप/दो दिन का उपवास तप कर, भाषा-वर्गणा के शेष पुद्गलों को पूर्ण करने के लिये अखण्ड धारा से देशना देनी प्रारम्भ की। इस देशना में प्रभु ने पुण्य के फल, पाप के फल और अन्य अनेक उपकारी प्रश्नों का प्रतिपादन किया। बारह पर्षदा भगवान् की इस वाणी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्रचित होकर हृदय के कटोरे में भाव-भक्ति पूर्वक झेल/ग्रहण कर रही थी। भगवान् की अन्तिम धर्मपर्षदा में अनेक विशिष्ट एवं सम्मान्य व्यक्ति, काशी-कौशल देश के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी-अठारह राजा भी उपस्थित थे।

इस प्रकार सोलह प्रहर पर्यन्त अखण्ड देशना देते-देते कार्तिक वदी अमावस्या की मध्य रात्रि के बाद स्वाति नक्षत्र के समय वह विषम क्षण आ पहुँचा। समय का परिपाक पूर्ण हुआ और त्रिभुवन स्वामी श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष के आयुष्य का बन्धन पूर्ण कर, महानिर्वाण को प्राप्त कर, सिद्ध, बुद्ध, पारंगत, निराकार, निरंजन बन गये। भगवान् इस दिन सर्वदा के लिये मर्त्य न रहकर समस्त शुभ-शुद्ध भावना के पुंज रूप में अमर्त्य/अमर बन गए। ज्ञान सूर्य विलुप्त हो गया।

पर्षदा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त भगवान् को दीन/अनाथ भाव से अश्रुसिक्त अंजलि अर्पण कर अन्तिम नमन करती रही। पावापुरी की भूमि पवित्र हो गई। अमावस्या की रात्रि धर्मपर्व बन गई। उस रात्रि में जन समूह ने दीपक जलाकर निर्वाण कल्याणक का बहुमान किया। यही दीपक पंक्ति दीपावली त्यौहार के रूप में प्रसिद्ध हो गई।

गौतम का विलाप और केवलज्ञान-प्राप्ति

गणधर गौतम देवशर्मा को प्रतिबोध देने के बाद वापस पावापुरी की ओर आ रहे थे। प्रभु की आज्ञा पालन करने से इनका रोम-रोम उल्लास से विकसित हो रहा था। जब भी परमात्मा की आज्ञा पालन करने का एवं अबूझ जीव को प्रतिबोध देकर उद्धार करने का अवसर मिलता तो वह दिन उनके लिये आनन्दोल्लास से परिपूर्ण बन जाता था।

प्रभु के चरणों में वापस पहुँचने की प्रबल उत्कण्ठा के कारण गौतम तेजी से कदम बढ़ा रहे थे।

इधर प्रभु का निर्वाण महोत्सव मनाने एवं अन्तिम संस्कार के लिये विमानों में बैठकर देवगण ताबड़तोड़ पावापुरी की ओर भागे जा रहे थे। आकाश में कोलाहाल-सा मच गया था। भागते हुए देवताओं के सहस्त्रों मुखों से, अवरुद्ध कण्ठों से एक ही शब्द निकल रहा था– ''आज ज्ञान सूर्य अस्त हो गया है, प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हो गए हैं। अन्तिम दर्शन करने शीघ्र चलो।''

देव-मुखों से निःसृत उक्त प्रलयकारी शब्द गौतम के कानों में पहुँचे। तुमुल कोलाहल के कारण अस्पष्ट ध्वनि को समझ नहीं पाये। कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने पर समझ में आया कि ''प्रभु का निर्वाण हो गया है।'' किन्तु, गौतम को इन शब्दों पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। वे सोचने लगे–''असम्भव है, कल ही तो प्रभु ने मुझे आज्ञा देकर यहाँ भेजा था। अतः ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। यह तो पागलों का प्रलाप-सा प्रतीत होता है।''

परन्तु, परन्तु, लाखों देवता पावापुरी की ओर भागे जा रहे हैं, शब्द लहरी अवरुद्ध कण्ठों से निकल रही है, पर क्यों?......?, प्रभु की वाणी थी–''देवगण असत्य नहीं बोलते'' ध्यान में आते ही गौतम का रोम-रोम विचलित/कम्पित हो उठा। वे निस्तब्ध से हो गये। ''निर्वाण'' जैसे प्रलयकारी शब्द पर विश्वास होते ही असीम अन्तर्वेदना के कारण मुख कान्तिहीन/श्यामल हो गया, आँखों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी, आँखों के सामने अंधेरा छा गया, शरीर और हाथ-पैर काँपने लगे, चेतना-शक्ति विलुप्त होने लगी और वे कटे वृक्ष की भाँति धड़ाम से पृथ्वी पर बैठ गये। बेसुध से, निश्चेष्ट से बैठे रहे। कुछ क्षणों के पश्चात् सोचने समझने की स्थिति में आने पर समवसरण में विराजमान प्रभु महावीर और उनके श्रीमुख से निःसृत हे गौतम! का दृश्य चलचित्र की भाँति उनकी आँखों के सामने घूमने लगा और वे सहसा निराधार, निरीह, असहाय बालक की भाँति सिसकियाँ भरते हुए विलाप करने लगे–

''मैं कैसा भाग्यहीन हूँ, भगवान् के ग्यारह गणधरों में से नव गणधर तो मोक्ष चले गये, अन्य भी अनेक आत्माएँ सिद्ध बन गईं, स्वयं भगवान् भी मुक्तिधाम में पधार गये, और मैं प्रभु का प्रथम शिष्य होकर भी अभी तक संसार में ही रह रहा हूँ। प्रभु तो पधार गये, अब मेरा कौन है?''

अन्तर् की गहरी वेदना उभरने लगी। दिशाएँ अन्धकारमय और बहरी बन गईं। चित्त में पुनः शून्यता व्याप्त होने लगी। तनिक से जागृत होते ही पुनः उपालम्भ के स्वरों में बोल उठे–

''हे महावीर! मुझ रंक पर यह असहनीय वज्रपात आपने कैसे कर डाला? मुझे मझधार में छोड़कर कैसे चल दिये? अब मेरा हाथ कौन पकड़ेगा? मेरा क्या होगा? मेरी नौका को कौन पार लगायेगा?''

हे प्रभो! हे प्रभो!! आपने यह क्या गजब ढ़ा दिया? मेरे साथ कैसा अन्याय कर डाला? विश्वास देकर विश्वास भंग क्यों किया? अब मेरे प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? मेरी शंकाओं का समाधान कौन करेगा? मैं किसे महावीर, महावीर कहूँगा? अब मुझे हे गौतम! कहकर प्रेम से कौन बुलाएगा? करुणासिन्धु भगवन् मेरे किस अपराध के बदले आपने ऐसी नृशंस कठोरता बरत कर अन्त समय में मुझे दूर कर दिया? अब मेरा कौन शरणदाता बनेगा? वास्तव में मैं तो आज विश्व में दीन-अनाथ बन गया?

प्रभो! आप तो सर्वज्ञ थे न! लोक-व्यवहार के ज्ञाता भी थे न! ऐसे समय में तो सामान्य लोग भी स्वजन सम्बन्धियों को दूर से अपने पास बुला लेते हैं, सीख देते हैं। प्रभो! आपने तो लोक-व्यवहार को भी तिलांजलि दे दी और मुझे दूर भगा दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभो! आपको जाना था तो चले जाते, पर इस बालक को पास में तो रखते। मैं अबोध बालक की तरह आपका अंचल/चरण पकड़ कर आपके मार्ग में बाधक नहीं बनता! मैं आपसे केवलज्ञान की भिक्षा-याचना भी नहीं करता।

ओ महावीर! क्या आप भूल गये? मैं तो आपके प्रति असीम अनुराग के कारण ''कैवल्य'' को भी तुच्छ समझता था! फिर भी आपने स्नेह भंग कर मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला! क्या यही आपकी प्रभुता थी?

इस प्रकार गौतम के अणु-अणु में से प्रभु के विरह की वेदना का क्रन्दन उठ रहा था। वे स्वयं को भूलकर, प्रभु के नाम पर ही निःश्वास भरते हुए अन्तर् वेदना को व्यक्त कर रहे थे।

ऐसी दयनीय एवं करुणस्थिति में भी उनके आँसुओं को पोंछने वाला, भग्न हृदय को आश्वासन देनेवाला और गहन शोक के सन्ताप को दूर करनेवाला इस पृथ्वीतल पर आज कोई न था। अनेक आत्माओं का आशा स्तम्भ, अनेक जीवों का उद्धारक और निपुण खिवैया भी आज विषम हताशा के गहन वात्याचक्र में फंस गया था।

विचार-परिवर्तन और केवलज्ञान–

भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अगाध/असीम अनुराग ही उनके केवलज्ञान की प्राप्ति में बाधक बन रहा था। किन्तु, उनकी इस भूल को बतलाने वाला वहाँ न कोई तीर्थंकर था और न कोई श्रमण या श्रमणी ही इस समय उनके पास उपस्थित थे। इस समय गौतम एकाकी, केवल एकाकी थे।

वेदनानुभूति जनित विलाप और उपालम्भात्मक आक्रोश उद्‌गारों के द्वारा प्रकट हो जाने पर गौतम का मन कुछ शान्त/हलका हुआ। अन्तर् कुछ स्थिर और स्वस्थ हुआ। सोचने-विचारने और वस्तुस्थिति समझने की शक्ति प्रकट हुई। सोचने की विचारधारा में परिवर्तन आया। अन्तर्मुखी होकर गौतम विचार करने लगे–

''अरे! चार ज्ञान और चौदह पूर्वो का धारक तथा महावीर-तीर्थ का संवाहक होकर मैं क्या करने लगा! मैं अनगार हूँ, क्या मुझे विलाप करना शोभा देता है? करुणासिन्धु, जगदुद्धारक प्रभु को उपालम्भ दूं; क्या मेरे लिये उचित है? अरे! जगद्वन्द्य प्रभु की कैसी अनिर्वचनीय ममता थी! अरे! प्रभु तो असीम स्नेह के सागर थे, क्या वे कभी कठोर बनकर, विश्वास भंग कर छोह दे सकते हैं? कदापि नहीं। अरे! भगवान् ने तो बारम्बार समझाया था–गौतम! प्रत्येक आत्मा स्वयं की साधना के बल पर सिद्धि प्राप्त कर सकती है। दूसरे के बल पर कोई सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता और न कोई किसी जीव की साधना के फल को रोक सकता है। मुझे अभी तक कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ तो इसमें भगवान् का क्या दोष है! इसमें भूल या कमी तो मेरी ही होनी चाहिए।''

गौतम का अन्तर्-चिन्तन बढ़ने से प्रशस्त विचारों का प्रवाह बहने लगा। वे वीर! महावीर!! का स्मरण करते-करते प्रभु के वीतरागपन पर विचार-मन्थन करने लगे ''ओ! भगवान् तो निर्मम, नीरागी और वीतराग थे। राग-द्वेष के दोष तो उनका स्पर्श भी नहीं कर पाते थे। ऐसे जगत् के हितकारी वीतराग प्रभु क्या मेरा अहित करने के लिये अन्त समय में मुझे अपने से दूर कर सकते थे? नहीं, नहीं! प्रभु ने जो कुछ किया मेरे कल्याण के लिये ही किया होगा।''

गौतम को स्पष्ट आभास होने लगा–''मेरी यह धारणा ही भ्रमपूर्ण थी कि प्रभु की मेरे ऊपर अपार ममता है। प्रभु के ऊपर ममता, आसक्ति, अनुराग दृष्टि तो मैं ही रखता था। मेरा यह प्रेम एकपक्षीय था। यह राग दृष्टि ही मेरे केवली बनने में बाधक बन रही थी। द्वेष-बुद्धि या राग-दृष्टि के पूर्ण अभाव में ही आत्म-सिद्धि का अमृततत्त्व प्रकट होता है, विद्यमानता में कदापि नहीं। मैं स्वयं ही अपनी सिद्धि को रोक रहा था, इसमें भगवान् का क्या दोष है? मेरी इस राग दृष्टि को दूर करने के लिये ही प्रभु ने अन्त समय में मुझे दूर कर, प्रकाश का मार्ग दिखाकर मुझ पर अनुग्रह किया है। किन्तु, मैं अबूझ इस रहस्य को नहीं समझ सका और प्रभु को ही दोष देने लगा। हे क्षमाश्रमण भगवन्! मेरे इस अपराध/दोष को क्षमा करें।''

पश्चाताप, आत्मनिरीक्षण तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों की अग्नि में गौतम के मोह, माया, ममता के शेष बन्धन क्षणमात्र में भस्मीभूत हो गये। उनकी आत्मा पूर्ण निर्मल बन गई और उनके जीवन में केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश व्याप्त हो गया।

भगवान् महावीर का निर्वाण गौतम स्वामी के केवलज्ञान का निमित्त बन गया।

ईस्वी पूर्व ५२७ कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का उषाकाल गौतम स्वामी के केवलज्ञान से प्रकाशमान हो गया। इसी दिन गौतम स्वामी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये थे।

प्रभु के निर्वाण से जन-समाज अथाह दुःख सागर में डूब गया था। गौतम के सर्वज्ञ बनने से उसमें अन्तर आया। चतुर्विध संघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गौतम स्वामी की जय-जयकार करने लगा।

महावीर का निर्वाण और गौतम के ज्ञान का प्रसंग एकरूप बनकर पवित्र स्मरण के रूप में सर्वदा स्मरणीय बन गया।

गौतम का निर्वाण

श्रमण भगवान् महावीर देहमुक्त सिद्ध हुए और गौतम स्वामी देहधारी मुक्तात्मा केवली हुए। महावीर तीर्थ-संस्थापक तीर्थंकर थे और गौतम सामान्य जिन बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञान की दिव्यप्रभा में गौतम स्वामी ने सर्वत्र विचरण किया। अनुभूति पूर्ण धर्मदेशना के माध्यम से सहस्रों आत्माओं को प्रतिबोध देकर सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते रहे। महावीर-शासन को उद्योतित करते हुए तीर्थ को सुदृढ़ और सबल बनाया।

गौतम स्वामी भगवान् महावीर के १४००० साधुओं, ३६००० साध्वियों, १५९००० श्रावकों और ३१८००० श्राविकाओं के एवं स्वयं तथा अन्य गणधरों की शिष्य-परम्पराओं के एकमात्र गणाधिपति, संवाहक और सफल संचालक होते हुए भी सर्वदा निःस्पृही, निरभिमानी एवं लाघव सम्पन्न ही रहे। अन्त में, भगवान् के शासन की एवं स्वयं के शिष्य-परिवार की बागडोर अपने ही लघुभ्राता आर्य सुधर्म को सौंप दी। यही कारण है कि भगवान् के प्रथम पट्टधर शिष्य एवं प्रथम गणधर होते हुए भी महावीर की परम्परा गौतम स्वामी से प्रारम्भ न होकर सुधर्म स्वामी के नाम से आज भी अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

केवली होने के पश्चात् वे १२ बारह वर्ष तक महावीर वाणी को जन-जन के हृदय की गहराइयों तक पहुँचाते रहे। महावीर की यशोगाथा को गाते रहे और शासन की ध्वजा को अबाधित रूप से फहराते रहे।

गौतम स्वामी अपनी देह का विश्व के समस्त जीवों के कल्याण के लिये निरन्तर उपयोग करते रहे। बाणवें वर्ष की परिपक्व अवस्था में उन्होंने देखा कि देह-विलय का समय निकट आ गया है, तो वे राजगृह नगर के वैभारगिरि पर आये और एक मास का पादपोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

अनशन के अन्त में देह-त्याग कर गौतम स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम की आत्म ज्योति, भगवान् महावीर और अनन्त मुक्तात्माओं की ज्योति में सदा के लिये मिल गई। महावीर के तुल्य, एकार्थ और विशेषता रहित बनकर प्रभु की वाणी को चरितार्थ कर दिया।

इस प्रकार गौतम स्वामी ५० वर्ष गृहवास में, ३० वर्ष संयम पर्याय में और १२ वर्ष केवली पर्याय में कुल ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर ईस्वी पूर्व ५१५ में अक्षय सुख के भोक्ता बनकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

गौतम स्वामी के नाम की महिमा

गौतम गणधर जीवन-साधना, योग-साधना और मोक्ष-साधना कर विश्व के कल्याणकारी साधक बन गये। उनकी अनुपम साधना महावीर-शासन की परम्परा के लिये अनुकरणीय एवं आदर्श बन गई। उनकी प्रशस्त साधना और गुणों को देखकर जहाँ श्रमण केशीकुमार जैसे आचार्य ''संशयातीत सर्वश्रुतमहोदधि'' कह कर अभिवन्दन करते हैं वहीं शास्त्रकार ''क्षमाश्रमण महामुनि गौतम'' एवं ''सिद्ध, बुद्ध, अक्षीण महानस भगवान् गौतम'' कहकर नमन करते हैं। परवर्ती आचार्यगण तो इन्हें ''समग्र अरिष्ट/अनिष्टों के प्रनाशक, समस्त अभीष्ट अर्थ/मनोकामनाओं के पूरक, सकल लब्धि-सिद्धियों के भण्डार, योगीन्द्र, विघ्नहारी एवं प्रातः स्मरणीय मानकर गौतम नाम का जप करने का विधान करते हुए उल्लसित हृदय से गुणगान करते हैं।''

महिमा मंडित गौतम शब्द का अर्थ करते हुए कहते हैं– ''गौ'' अर्थात् कामधेनुः ''त'' अर्थात् तरु/कल्पवृक्ष और ''म'' अर्थात् चिन्तामणि रत्न। इसी अर्थ/भावना को प्रकट करते हुए विनयप्रभोपाध्याय गौतम रास में स्पष्टतः कहते हैं–

''चिन्तामणी कर चढ़ीयउ आज, सुरतरु सारइ वंछिय काज,
कामकुम्भ सहु वशि हुअए ।
कामगवी पूरइ मन-कामी, अष्ट महासिद्धि आवइ धामि,
सामि गोयम अनुसरउ ए ।।४२।।''

विनयप्रभोपाध्याय यह भी विधान करते हैं–''ॐ ह्रीं श्रीं अर्ह श्रीगौतमस्वामिने नमः'' मन्त्र का अहर्निश जप करना चाहिए, इससे सभी मनोवांछित कार्य पूर्ण होते हैं।

गौतम के नाम की ही महिमा है कि आज भी प्रातःकाल में अहर्निश नाम-स्मरण करने से सभी कार्य सफल होते दिखाई देते हैं।

जैन समाज आज भी लक्ष्मी पूजन के पश्चात् नवीन बही-खाता में प्रथम पृष्ठ पर ही ''श्रीगौतमस्वामीजी महाराज तणी लब्धि हो जो'' लिखकर नाम-महिमा के साथ अपनी भावि-समृद्धि एवं सफलता की कामना उजाकर करते हैं।

वास्तविकता यह है कि आज भी गौतम स्वामी का पवित्र एवं मंगल नाम जन-जन के हृदय को आह्लादित करता है। प्रतिदिन लाखों आत्माएँ आज भी प्रभात की मंगल बेला में भक्तिपूर्वक भाव-विभोर होकर नाम-स्मरण करते हुए बोलती है–

अंगूठे अमृत बसे, लब्धितणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार ।

नाम स्मरण के साथ जैन परम्परा में गौतम के नाम से कई तप भी प्रचलित हैं, जैसे–

१. वीर गणधर तप, २. गौतम पडधो तप
३. गौतम कमल तप ४. निर्वाण दीपक तप

इन तपों की आराधना कर भक्त जन गौतम के नाम का स्मरण-जप करते हुए साधना करते हैं।

ऐसे महिमा मण्डित महामानव ज्योतिपुंज क्षमाश्रमण गणधर गौतम स्वामी को कोटिशः नमन।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org